जेंडर असमानता : एक ऐतिहासिक अध्ययन

अनुज कुमार*

समाज का निर्माण स्त्री-पुरुष की भागीदारी से होता है। विभिन्न संस्कृतियों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान रखने वाली नारी की स्थिति सदैव परिवर्तित होती रही है। प्राचीनकाल में महिला को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। धर्मशास्त्रों एवं वैदिक ग्रंथों के आधार पर उन्हें पुरुषों की तरह सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक अधिकार प्राप्त थे। कहीं-कहीं तो उन्हें गुरु से भी श्रेष्ठ माना गया है। इसके विपरीत कुछ धर्मशास्त्रों में नारी को दोयम दर्ज़े की बात कही गई है। हमारे देश में जितने पुराने रीति-रिवाज़ हैं उतनी ही पुरानी है महिला के संदर्भ में होने वाली मानवाधिकारों के हनन की प्रामाणिकता। बालिका भ्रूण हत्या, वेश्यावृत्ति, बालविवाह, बहुपत्नी प्रथा, दहेज प्रथा, सती प्रथा, विधवा विवाह निषेध, पर्दा प्रथा, स्त्री शिक्षा पर रोक, डायन प्रथा एवं दासी प्रथा आदि कुप्रथाओं के प्रचलन का एक लंबा इतिहास है। पुरुष प्रधान समाज होने के कारण आरंभिक काल से जेंडर असमानता यथा-शोषण, उत्पीड़न, पक्षपात और दुराग्रहों का सामना महिलाओं को करना पड़ता है। यह असमानता परिवार से लेकर सरकारी नीतियों में भी दृष्टिगोचर होती है। गैर-बराबरी की सामाजिक व्यवस्था में काम के बंटवारे, बहुआयामी काम का बोझ, घरेलू काम की ज़िम्मेदारियाँ आदि कई ऐसे मामले हैं जो चिरकाल से प्रचलन में हैं। आधुनिक समाज में भी ऐसी स्थितियाँ देखने को मिलती हैं। हमारा समाज अपनी परंपराओं को तोड़ने हेतु पूरी तरह तैयार नहीं है। संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद महिलाओं के खिलाफ़ सामाजिक पूर्वाग्रह कायम है। आधी आबादी की स्थिति में सुधार के बगैर बेहतर समाज की कल्पना संभव नहीं है। वैचारिक क्रांति के द्वारा ही महिला सशक्तीकरण के आंदोलन को अपने मुकाम तक पहुँचाने का प्रयास सफल हो सकता है।

* *अध्यापक*, जवाहर नवोदय विद्यालय, सिरमौर, जिला-रीवा, मध्यप्रदेश

समाज का निर्माण स्त्री-पुरुष के सहयोग से होता है। इसका आशय है कि सामाजिक व्यवस्था के संचालन में दोनों की समान भागीदारी। महिलाओं की स्थिति को लेकर प्रारंभ से अब तक दो तरह के विचार मौजूद हैं- एक वह, जो उसे परंपरागत रूप से पुरुषों के अधीन एवं गृहिणी के रूप में समझते हैं। वहीं दूसरी ओर, एक समुदाय ऐसा है जो उसे राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और बौद्धिक रूप से सशक्त स्वीकारता है। विभिन्न संस्कृतियों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान रखने वाली नारी की स्थिति सदैव परिवर्तित होती रही है। प्राचीनकाल में महिला को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। धर्मशास्त्रों एवं वैदिक ग्रंथों के आधार पर उन्हें पुरुषों की तरह सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक अधिकार प्राप्त थे। अथर्ववेद में तो उन्हें घर एवं परिवार की साम्राज्ञी कहा गया है। जीवनसाथी चुनने, वैदिक कर्मों में पतियों के साथ भाग लेने की चर्चा है। कहीं-कहीं तो उन्हें गुरु से भी श्रेष्ठ माना गया है। इसके विपरीत कुछ धर्मशास्त्रों में नारी को दोयम दर्ज़े की बात कही गई है। मनुसंहिता में महिलाओं पर आजीवन नियंत्रण रखने की चर्चा है। हमारे देश में जितने पुराने रीति-रिवाज़ हैं उतनी ही पुरानी है महिला के संदर्भ में होने वाली मानवाधिकारों के हनन की प्रामाणिकता। बालिका भ्रूणहत्या, वेश्यावृत्ति, बालविवाह, बहुपत्नी प्रथा, दहेज प्रथा, सती प्रथा, विधवा विवाह निषेध, पर्दा प्रथा, स्त्री शिक्षा पर रोक, डायन प्रथा एवं दासी प्रथा आदि कुप्रथाओं के प्रचलन का एक लंबा इतिहास है। पुरुष प्रधान समाज होने के कारण आरंभिक काल से जेंडर असमानता यथा-शोषण उत्पीड़न, पक्षपात और दुराग्रहों का सामना महिलाओं को करना पड़ता है।

इतिहास की बात की जाए तो बौद्धकाल में महिलाओं की सामाजिक परिस्थिति अच्छी नहीं थी, लेकिन योग्य महिलाओं को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। बौद्ध मठों में भिक्षुणियों के शिक्षण की व्यवस्था रहती थी, किंतु आम स्त्रियों में शिक्षा का ह्रास हो रहा था। स्त्रियों पर कुछ नए सामाजिक प्रतिबंध लगाए गए थे।

हमारे ऐतिहासिक साहित्य में ऐसी बातों का भी उल्लेख किया गया है जिनके आधार पर पत्नियों का परित्याग किया जा सकता है। इन आधारों में मद्यपान, दुश्चरित्रता, असाध्य रोग, अपव्यय, बंध्यात्व, कटु भाषण, केवल पुत्रियों का जन्म आदि बातें शामिल थीं। कालक्रम में लड़कियों को उपनयन के अधिकार से वंचित कर दिया गया। पितृप्रधान परिवारों के उदय से परिवार में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आने लगी। मध्यकालीन युग में मुस्लिम आक्रमणकारियों के आने के बाद यह गिरावट बढ़ती गई। पर्दा प्रथा का प्रसार हुआ जिससे भारतीय महिलाओं के शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्रियाकलाप को गहरा धक्का लगा। महिलाओं को भोग्या के रूप में समझा जाने लगा। ब्रिटिश शासन काल के प्रारंभिक चरणों में देश में महिलाओं की स्थिति अत्यंत खराब हो चुकी थी। अनेक सामाजिक व धार्मिक कुप्रथाओं का सर्वाधिक असर महिलाओं पर ही था। भारत में पुरुषों की अपेक्षा महिला साक्षरता के निम्न दर की पृष्ठभूमि भी ऐतिहासिक कारणों से रही है। उन समाजों में

जहाँ लड़कों को पढ़ना-लिखना सिखाया जाता था वहीं लड़कियों को अक्षर तक सीखने की अनुमति नहीं थी। यहाँ तक कि उन परिवारों में भी जहाँ कुम्हारी, बुनकरी और हस्तकला सिखाई जाती थी-यह धारणा थी कि लड़कियों और औरतों का काम केवल सहायता करने तक ही सीमित है। उन्नीसवीं शताब्दी में शिक्षा के बारे में कई नए विचारों ने जन्म लिया। विद्यालय अधिक प्रचलन में आ गए और वे समाज, जिन्होंने स्वयं कभी पढ़ना-लिखना नहीं सीखा था अपने बच्चों को स्कूल भेजने लगे। तब भी लड़कियों की शिक्षा को लेकर बहुत विरोध हुआ। इसके बावजूद बहुत-सी स्त्रियों और पुरुषों ने बालिकाओं के लिए स्कूल खोलने के प्रयत्न किए। स्त्रियों ने पढ़ना-लिखना सीखने के लिए संघर्ष किया। प्रसंगवश यहाँ राससुन्दरी देवी (1800-1890) के जीवन की चर्चा उचित जान पड़ती है। बंगाल में जन्मी राससुन्दरी देवी ने साठ वर्ष की अवस्था में बांग्ला भाषा में अपनी आत्म कथा ''आमार जीवन'' नामक पुस्तक में लिखी। उस समय लोगों का विश्वास था कि यदि लड़की लिखती-पढ़ती है तो वह पति के लिए दुर्भाग्य लाती है और विधवा हो जाती है। इसके बावजूद उन्होंने अपनी शादी के बहुत समय बाद स्वयं ही छुप-छुप कर लिखना-पढ़ना सीखा। रूकैया शेखावत हुसैन भी एक धनी परिवार में जन्मी महिला थीं जो उर्दू पढ़ना-लिखना जानती थीं परंतु उन्हें बांग्ला और अंग्रेज़ी सीखने से रोका गया। उस समय अंग्रेज़ी को एक ऐसी भाषा के रूप में देखा जाता था जो लड़कियों के सामने नए विचार रखती थी, जिन्हें लोग लड़कियों के लिए ठीक नहीं मानते थे। इसलिए अंग्रेज़ी अधिकतर लड़कों को ही पढ़ाई जाती थी। रूकैया ने अपने बड़े भाई और बहन के सहयोग से बांग्ला और अंग्रेज़ी पढ़ना-लिखना सीखा और आगे जाकर वो एक लेखिका बनीं।

शिक्षा प्राप्त करके कुछ महिलाओं ने समाज में स्त्रियों की स्थिति के बारे में प्रश्न उठाए। उन्होंने असमानता के अपने अनुभवों का वर्णन करते हुए कहानियाँ, पत्र और आत्मकथाएँ लिखीं। अपने लेखों में उन्होंने स्त्री और पुरुष दोनों के लिए सोचने और जीने के नए-नए तरीकों की कल्पना की। राससुन्दरी देवी और रूकैया हुसैन जिन्हें पढ़ने-लिखने की अनुमति नहीं मिली थी, की स्थिति के विपरीत वर्तमान भारत में बड़ी संख्या में लड़कियाँ स्कूल जा रही हैं। इसके बावजूद भी बहुत-सी लड़कियाँ गरीबी, शिक्षण सुविधाओं के अभाव और भेद-भाव के कारण स्कूल जाना छोड़ देती हैं। सभी समाजों और वर्गों की पृष्ठभूमि वाले बच्चों को शिक्षण की समान सुविधाएँ प्रदान करना, विशेषकर लड़कियों को आज भी भारत में एक चुनौती है। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, मुस्लिम और दलित पृष्ठभूमि की लड़कियों के स्कूल छोड़ने की दर सर्वाधिक है। पारंपरिक समाज में महिला और पुरुषों के बीच कई तरह से भेदभाव किया जाता रहा है। ये भेदभाव पूर्वाग्रहों या रूढ़िबद्ध धारणाओं के आधार पर किए जाते रहे हैं। वैदिक साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है

कि प्राचीन समय में स्त्रियों की शिक्षा संबंधी व्यवस्था उन्नत थी। बहुत-सी नारियों ने वैदिक ऋचाओं तक की रचना की है। जैसे अत्रिकुल की विश्ववारा, अपाला, घोषा, काक्षीवती ने सूक्तों की रचना की है। माता-पिता स्वयं अपनी कन्या को ब्रह्मचर्य जीवन में समुचित शिक्षा दिया करते थे। अध्ययनरत छात्राओं की दो श्रेणियाँ थी। प्रथम श्रेणी की छात्राएँ "ब्रह्मावादिनी" कही जाती थीं जो आजीवन दर्शनशास्त्र एवं अध्यात्म का अध्ययन करती थीं, वहीं दूसरी श्रेणी की छात्राएँ "सद्योवधू" कहलाती थीं जो विवाह के पूर्व तक अपना अध्ययन जारी रखती थीं। कन्याओं के लिए वेदाध्ययन आवश्यक था क्योंकि स्त्रियों को नियमित रूप से प्रातः, संध्या वैदिक प्रार्थनाएँ करनी पड़ती थी। पत्नियों को यज्ञादि में अपने पति के साथ मंत्रोच्चारण भी करना पड़ता था। वहीं दूसरी ओर स्मृति ग्रंथों के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय स्त्रियों के शिक्षा प्राप्ति अधिकार का हनन किया गया। मनु व याज्ञवल्क्य ने स्त्रियों को शूद्रों की श्रेणी में स्थान दिया है और उन्हें वेद अध्ययन से रोका है। मनु, गौतम आदि ने स्त्रियों को अस्वतंत्र माना है। इनके विचार में स्त्रियों के विवाह संस्कार उपनयन की तरह हैं और पति सेवा गुरुकुल के समान। यहीं से स्त्रियों की परनिर्भरता आरंभ होती है। यह भी ज्ञात है कि उस समय सहशिक्षा का पूर्णतः निषेध था। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार नहीं था।

भारत में निराश्रित एवं परित्यक्त महिलाएँ प्राचीन काल से अधिक संख्या में रही हैं। विधवा विवाह को कानून के अंतर्गत मान्यता दी गई है लेकिन व्यवहार में विधवाओं के पुनर्विवाह को सामान्य सामाजिक स्वीकृति नहीं मिल पाई है। देश में महिलाएँ खेतों और कुटीर उद्योगों में सदियों से काम करती आई हैं लेकिन औद्योगिकीकरण के प्रसार से उन्हें कारखानों, बागानों, खानों, कार्यालयों एवं अन्य औद्योगिक प्रतिष्ठानों एवं सेवाओं में रोज़गार के पर्याप्त अवसर मिले हैं। इसके बाद भी दोहरे श्रम की समस्या, निम्न मजदूरी की समस्या, कार्य की कठिन दशाएँ, प्रसूति से उत्पन्न समस्याएँ, आवास व यातायात, मनोरंजन के अभाव, सामाजिक सुरक्षा की समस्याओं से उन्हें दो-चार होना पड़ता है। अनैतिक पतन की शिकार स्त्रियों को कई प्रकार की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। समाज ऐसी स्त्रियों को स्वीकार नहीं करता हैं।

पुरुष प्रधान समाज होने के कारण आरंभिक काल से जेंडर असमानता यथा- शोषण, उत्पीड़न, पक्षपात और दुराग्रहों का सामना महिलाओं को करना पड़ता है। यह असमानता परिवार से लेकर सरकारी नीतियों में भी दृष्टिगोचर होती है। आधुनिक समाज में भी ऐसी स्थितियाँ देखने को मिलती हैं। हमारा समाज अपनी परंपराओं को तोड़ने हेतु तैयार नहीं है। नारी के सबल रूप को पुरुष प्रधान समाज मन मस्तिष्क से स्वीकार नहीं कर सका है। संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद महिलाओं के खिलाफ़ सामाजिक पूर्वाग्रह कायम

है। वैश्विक स्तर पर लोकतांत्रिक व्यवस्था जैसे–जैसे सुदृढ़ होती गई, महिलाओं को पुरुषों के समकक्ष लाने की मुहिम में भी तेज़ी आती गई। विधि एवं न्याय के समक्ष समानता, लोक सेवाओं में नियुक्ति हेतु समान अवसर, विचार की अभिव्यक्ति, निवास, रोज़गार आदि की स्वतंत्रता, पारिवारिक संपत्ति में हिस्सेदारी, निर्णयन के प्रत्येक स्तर पर समानता आदि के मामलों में महिलाओं को न केवल पुरुषों के बराबर लाया गया वरन जहाँ कहीं आवश्यकता थी, वहाँ उनके सम्मान एवं निष्ठा की रक्षा के लिए विशेष प्रावधान भी किए गए। महिलाओं के अधिकारों की प्राप्ति के क्षेत्र में भारत में भी संघर्ष की कहानी लंबी है। महिलाओं में शिक्षा के बढ़ते स्तर ने इसमें योगदान दिया है। एक आंदोलन के रूप में महिला सशक्तीकरण की शुरुआत यू.एन.ओ. द्वारा 8 मार्च 1975 को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस से मानी जा सकती है। 1985 में "अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन" का आयोजन नैरोबी में किया गया तथा 1975 -1985 के दशक को "महिला दशक" के रूप में मनाया गया। भारत में महिला सशक्तीकरण का बीजारोपण भारतीय संविधान के निर्माण के साथ ही हो गया था। महिलाओं के सशक्तीकरण की प्रक्रिया में चौथी पंचवर्षीय योजना के बाद से उल्लेखनीय रूप से परिवर्तन आया है। महिलाओं के विकास के मुद्दे का स्थान महिलाओं के सशक्तीकरण ने ले लिया है। पंचायती राज व्यवस्था एवं नगरीय निकायों में एक तिहाई पद का आरक्षण इस दिशा में एक क्रांतिकारी कदम है। जनवरी 1992 में राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना सदियों से पिछड़े, शोषित व उपेक्षित नारी के विकास पर बल देने के उद्देश्य से की गई है। भारत में महिलाओं के प्रति की जाने वाली हिंसा का स्वरूप व्यापक है और इसका एक बड़ा हिस्सा घरेलू हिंसा के रूप में पारंपरिक रूप से समाज में दिखाई पड़ता है। इसी प्रयास के अंतर्गत घरेलू हिंसा अधिनियम-2005 को संदर्भित किया जा सकता है।

26 अक्टूबर, 2006 से यह कानून पूरे भारत में लागू है। इसके अंतर्गत महिलाओं के प्रति की जाने वाली घरेलू हिंसा में शारीरिक मारपीट ही नहीं अपितु उत्पीड़न, यौनिक, मौखिक, भावनात्मक व आर्थिक पक्ष के साथ-साथ महिला को घर से निकालना या निकालने की धमकी देने को भी घरेलू हिंसा में सम्मिलित किया गया है। इसके लिए सरकार ने कानूनी रूप से महिला को अपने पैतृक मकान एवं ससुराल के मकान के एक भाग में रहने का अधिकार भी दिया है, भले ही किसी महिला को अपने वैवाहिक गृह में स्वामित्वाधिकार हो या नहीं, उसे वहाँ रहने का अधिकार किसी मजिस्ट्रेट के द्वारा प्राप्त किया जा सकेगा। यह कानून एक प्रगतिवादी कदम है। अधिनियम यह व्यक्त करता है कि यदि प्रशासन प्रतिबद्धता से कार्य करता है तो महिला उत्पीड़न कम किया जा सकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से अब तक विविध क्षेत्रों में महिलाओं की उपलब्धियाँ एवं तरक्की बढ़ी है। महिलाओं ने देश के हर शिखर पर अपने झंडे बुलंद किए हैं

चाहे वे राष्ट्रपति के रूप में हो या पेप्सिको की सी.ई.ओ. इंदिरा नुयि अथवा किरन बेदी। अब आंसुओं का दौर गया। वे समाज को रचती हैं, सहेज़ती हैं, उनकी आँखों ने खुद के लिए सपने देखना सीख लिया है और उसे हकीकत में बदल रही हैं क्योंकि अब उनकी आवाज है :

न सहेंगे न झुकेंगे, न रुकेंगे मंजिल आने तक ।
आगे बढ़ेंगे लेकर रहेंगे, न छोड़ेंगे अपना हक ॥

फिर भी संवैधानिक प्रावधान, महिला कानून एवं महिलाओं की योजना के बावजूद महिलाओं के खिलाफ़ सामाजिक पूर्वाग्रह कायम है। आधी आबादी की स्थिति में सुधार के बगैर बेहतर समाज की कल्पना संभव नहीं है। वैचारिक क्रांति के द्वारा ही महिला सशक्तीकरण के आंदोलन का अपने मुकाम तक पहुँचने का प्रयास सफल हो सकता है।